प्रथम एन.के.पी साल्वे स्मारक व्याख्यान देते हुए भारत के राष्ट्रपति, श्री प्रणब मुखर्जी का अभिभाषण

राष्ट्रपति भवन, ऑडिटोरियम, नई दिल्ली : 16.02.2013

आज स्वर्गीय श्री एन.के.पी. साल्वे पर प्रथम स्मारक व्याख्यान के लिए आप सबके बीच आना बहुत प्रसन्नता की बात है, जो कि एक बहुआयामी सख्शियत थे। मुझे 'संविधान एवं शासन' पर स्वर्गीय श्री एन.के.पी. साल्वे पर प्रथम स्मारक व्याख्यान देने के लिए यहां आकर बहुत खुशी हो रही है।

किसी भी लोकतंत्र का सबसे महत्त्वपूर्ण गुण यह होता है कि उसमें व्यक्ति के शासन की जगह कानून का शासन होता है तथा शासन की संस्थाएं तथा यह उनके संचालन के लिए प्रक्रियाओं की स्थापना करके इसकी प्राप्ति करता है। शासन के समक्ष सदैव बहुत सी चुनौतियां होती है। ऐसे देश में यह और भी ज्यादा हैं जहां विश्व की 17.5 प्रतिशत जनसंख्या रहती है परंतु केवल 2.4 प्राकृतिक संसाधन है तथा जहां बहु-सांस्कृतिक, बहु-भाषी तथा बहु-धार्मिक समाज है। 355 मिलियन जनता के गरीबी रेखा पर जीवन-यापन करने से जुड़े विकास संबंधी मुद्दों के कारण ये चुनौतियां और भी बढ़ जाती हैं।

अपने जन्म के समय से, भारत के सामने निर्धनता तथा विकास की चुनौतियां रही हैं। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए इन संस्थाओं को नई कार्यनीतियों को अनुकूलित करना और अपनाना होगा तथा समय-समय पर खुद में सुधार करना होगा। इसलिए हमारी संवैधानिक संस्थाओं के कार्य करने के तरीकों पर विचार-विमर्श और चर्चा की जरूरत है, जिससे उनको मजबूत करने की दृष्टि से उनके विकास को नापा जा सके और उनके कार्य निष्पादन का आकलन हो सके।

देवियो और सज्जनो, हमने अपने संविधान द्वारा स्वयं को गणतंत्र प्रदान करने का निश्चय किया था। हमारे संविधान ने वैयक्तिक अधिकारों तथा सामुदायिक अधिकारों को मान्यता देते हुए उन्हें मौलिक अधिकारों का नाम देकर अग्रता प्रदान की थी तथा उन्हें प्रवृत्तनीय बनाया था तथा न्यायालयों को उनको सीमित करने अथवा उन पर प्रतिबंध लगाने के प्रयासों के खिलाफ बचाव के रूप में कार्य करने की शक्ति प्रदान की थी।

हमारे राष्ट्र निर्माता न्यायपालिका और कार्यपालिका तथा विधायिका अथवा किन्हीं दो के बीच टकराव की संभावना से बेखबर नहीं थे परंतु उन्हें राजनीतिक संप्रभुता के उच्चतम प्रतीक जनता की राय की शक्ति पर भरोसा था। उन्हें मालूम था कि सरकार के विभिन्न अंग देश तथा उसकी जनता के लाभ के लिए एक साथ रहना तथा मिलकर कार्य करना सीख जाएंगे।

हमारे संविधान में राष्ट्र निर्माताओं की आकांक्षाओं का उल्लेख है। सरकार के लिए दिशानिर्देश राज्य नीति के नीति निर्देशक सिद्धांतों के रूप में संविधान के भाग IV में निहित हैं। राज्य नीति के इन सिद्धांतों तथा नागरिकों के मौलिक अधिकारों के बीच संबंध, राष्ट्र निर्माताओं द्वारा इस विश्वास पर तय किए गए थे कि - सबसे अधिक वांछित साध्य भी केवल अनुमन्य साधनों से प्राप्त किए जाने चाहिए।

देवियो और सज्जनो, हमारे संविधान ने राज्य के तीन अंग सृजित किए थे: विधायिका, कानूनों के निर्माण के लिए तथा कार्यपालिका की जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए, कार्यपालिका , इस विशाल देश का शासन चलाने के लिए, और न्यायपालिका, यह सुनिश्चित करने के लिए कि सभी संस्थाएं अपने सांविधानिक दायरे में ही रहें तथा यह सुनिश्चित करने के लिए कि लोगों को प्रदत्त सांविधानिक अधिकारों का कोई हनन न करे।

कोई भी लिखित दस्तावेज, भले ही वह भारतीय संविधान जैसा व्यापक और विशाल ही क्यों न हो, कभी भी संपूर्ण नहीं हो सकता। संविधान किसी देश पर शासन के लिए एक अधिकार पत्र होता है और इसका अधिकार क्षेत्र गतिशील होता है तथा इसका निरंतर उद्विकास होता रहता है। सुशासन क्या है इसकी अवधारणा समय की जरूरतों से निर्धारित होती है और दशकों के अनुभव से परिपक्व होती है। तथापि इसमें कुछ ऐसे चिरंतन मूल्यों का समावेश होता है जिनकी कभी भी अवहेलना नहीं की जानी चाहिए। यह हमारा दायित्व है कि हम इन मूल्यों की पहचान करें और इन मूल्यों की कसौटी पर अपने कार्य निष्पादन का आकलन करें।

संविधान की उद्देशिका में, भारत के लोगों को पंथनिरपेक्ष होने के निश्चय को दर्ज किया गया है। इसमें सभी नागरिकों को न्याय, स्वतंत्रता, समानता तथा भाईचारा प्रदान करने के निश्चय को भी दर्ज किया गया है। हम यह सब कहां तक प्राप्त कर पाए हैं और आगे हमें क्या करना है?

देवियो और सज्जनो, कुछ संतुष्टि के साथ यह कहा जा सकता है कि हमारे समक्ष आई चुनौतियों के बावजूद, भारत दृढ़ता से अपनी पंथनिरपेक्षता पर दृढ़ता से डटा रहा है। पंथनिरपेक्षता का स्वरूप अपनी व्यापकता में क्या है, इस पर चर्चाएं हुई हैं और यह किसी भी सक्रिय समाज में होनी भी चाहिए, परंतु सभी धर्मों की समानता, विचारों और विवेक की स्वतंत्रता तथा धर्म के पालन करने और अपनाने की स्वतंत्रता और अपनी पसंद की संस्थाएं स्थापित करने के मौलिक सिद्धांतों का इस देश में दृढ़ता से पालन किया गया है।

इसमें व्यतिक्रम भी हुए हैं तथा हर एक सांप्रदायिक संघर्ष ने, चाहे वह किसी भी आकार का रहा है, देश की चेतना पर अपना दाग छोड़ा है। इस समस्या में अब आतंकवाद के कारण बढ़ोतरी हुई है जो धार्मिक आधार का दावा करता है। किसी भी लोकतंत्र के सामने सभ्यतागत व्यवहार के बुनियादी

मूल्यों का पालन करने तथा उकसावे के बावजूद मानवाधिकारों तथा नागरिक स्वतंत्रता का सम्मान करने की चुनौती होती है।

किसी भी राष्ट्र के जीवन में समाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय एक मंजिल से कहीं अधिक एक यात्रा होती है। समाजिक न्याय संबंधी उपाय किए गए हैं और पिछले दशकों के दौरान उनके धीमे परंतु ठोस परिणाम दिखाई देने लगे हैं। अस्पृश्यता निवारण एक ऐसा ही उपाय है। तथापि, अधिक समाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना है, खासकर लौंगिक न्याय के लिए। सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए केवल शासन में ही नहीं वरन् सामाजिक लोकाचार में परिवर्तन तथा मानसिकताओं में बदलाव जरूरी है और यह कार्य केवल विधायिका, कार्यपालिका अथवा न्यायालयों का नहीं है बल्कि हम में से हर एक का है।

राजनीतिक न्याय एक ऐसा मोर्चा है जिसमें हम कुछ संतुष्टि के साथ पीछे देख सकते हैं। समाज के वंचित तबकों का निरंतर सशक्तीकरण इस बात का प्रमाण है कि किस तरह राजनीतिक न्याय को सफलतापूर्वक प्राप्त किया गया है।

किसी भी लोकतंत्र का परम लक्ष्य होता है, आर्थिक, धार्मिक अथवा सामाजिक हैसियत की परवाह किए बिना, हर व्यक्ति को सशक्त करना। कई लोगों को यह दिवास्वप्न लग सकता है परंतु किसी भी व्यवस्था की त़ाकत, इसकी प्राप्ति के लिए निरंतर प्रयास करने की उसकी क्षमता में निहित होती है। यह हमारा दायित्व है कि हम ऐसी व्यवस्था का निर्माण करें, जिसमें राजनीति में प्रवेश केवल कुछ ही भाग्यशाली लोगों तक सीमित न रहे बल्कि कोई भी साधारण भारतीय इसमें भाग लेने में समर्थ हो। यद्यपि, हमने इसे कुछ हद तक इसे प्राप्त कर लिया है। हमारे कुछ महानतम् सार्वजनिक व्यक्तित्व मामूली घरों से आए, जिससे यह पता चलता है कि किस तरह अध्यवसाय और दृढ़ निश्चय से विपरीत परिस्थितियों पर विजय पाई जा सकती है।

आर्थिक विकास सुशासन के लिए सबसे जरूरी है। जो धन सम्पदा हमारे पास है ही नहीं हम उसे बांट नहीं सकते, इसलिए धन संपदा पैदा करना अनिवार्यत: राज्य की नीति का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। तथापि, इसमें भी समानता के सिद्धांत का समावेश होना चाहिए, जिस पर कोई समझौता नहीं हो सकता।

समतावादी समाज की रचना केवल तभी संभव है जब विकास समावेशी हो। यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि न्याय तथा अवसर समान रूप से उपलब्ध हो तथा राज्य इस तरह की परिस्थितियां न पैदा करे जिसमें केवल कुछ ही भाग्यशाली लोग निर्धनताग्रस्त आम लोगों की कीमत पर फलते-फूलते हों। एक सतत् समाज केवल समतावादी सिद्धांतों पर आधारित हो सकता है।

देवियो और सज्जनो, लोकतंत्र की वेस्टमिंस्टर प्रणाली उपलब्ध कराने के बावजूद, अर्ध-संघीय ढांचा प्रदान करने के हमारे राष्ट्र निर्माताओं के निर्णय को समझने की जरूरत है। हमने काफी हद तक संघीय व्यवस्था को प्राप्त कर लिया है और इस सफलता का जीता-जागता उदाहरण है यह राजनीतिक सच्चाई कि क्षेत्रीय दलों की आकांक्षाओं को केंद्र में सरकार बनाने में समुचित स्थान मिल रहा है।

विवादों के समाधान की संवैधानिक व्यवस्था अंतिम उपाय है। जटिल संघीय समस्याओं का न्याय निर्णयन कभी संतोषजनक नहीं होता। राजनीतिक चातुर्य तथा सद्भावना का कोई विकल्प नहीं है। इस प्रकार के विवादों में परिकल्पित होने वाली शासन संबंधी समस्याओं का समाधान राष्ट्रीय भावना के साथ, पक्षपातपूर्ण राजनीतिक हितों से हटकर तथा इस सिद्धांत का सच्चा अनुपालन करते हुए करना चाहिए कि लोकतंत्र का अर्थ है आपस में बांटना और समान रूप से बांटना।

देवियो और सज्जनो, भारत विश्व शासन सूचकांक में ऊँचे स्थान पर नहीं है, हालांकि खरीद क्षमता के आधार पर दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है परंतु विनियमात्मक गुणवत्ता तथा भ्रष्टाचार नियंत्रण सूचकांक पर इसका स्थान बहुत नीचे है। इसमें बदलाव लाना होगा। हम तब तक सच्ची प्रगति हासिल नहीं कर सकते, जब तक शासन में सुधार नहीं होता। इन बुराइयों के लिए कोई एक वर्ग जिम्मेदार नहीं है। पूरे समाज को नैतिक दिशा का पुन: निर्धारण करना होगा।

देवियो और सज्जनो, हमारी उन कुछ संस्थाओं में जिन पर लोगों को गर्व होता है। न्यायपालिका भी है। राष्ट्र निर्माताओं के स्वप्नों को साकार करते हुए हमारी न्यायापालिका पूरी तरह स्वतंत्र है तथा इसने सदैव संवैधानिक व्यतिक्रमों पर रोक लगाई है।

कुछ समय से, यह अवधारणा बनी है कि न्यायपालिका द्वारा व्यापक भूमिका अपनाई जा रही है। इनमें से कुछ तो संविधान में निर्धारित नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों के नवान्वेषी व्याख्याओं के कारण पैदा हुई है, जो कि अपरिहार्य है। जैसा कि अनिवार्य है, कभी-कभी यह माना जाता है कि न्यायालय उन क्षेत्रों में पहुंच जाता है जो कि कार्यपालिका सरकार अथवा विधायिका के नीति निर्माताओं के लिए छोड़ दिए जाने चाहिएं। शक्तियों का पृथथीकरण एक संवैधानिक गुण है, जिसके बारे में कभी कोई संदेह नहीं रहा और इसका सदैव सम्मान होना चाहिए।

हमें यह आजादी अपनी सामजिक व्यवस्था को सुधारने के लिए मिली है जो कि असमानता, भेदभाव तथा अन्य ऐसी चीजों से भरी पड़ी है जो हमारे मौलिक अधिकारों से टकराती हैं।

धन्यवाद